देव भूमि हिमाचल की कला का अवलोकन व चिन्तन

संजीव कुमार
पीएचडी शोधकर्ता, दृश्य कला विभाग, हि.प्र. विश्वविद्यालय, शिमला

हिमाचल शब्द दो शब्दों 'हिम' तथा 'अचल' से मिलकर बना है। 'हिम' का अर्थ है बर्फ तथा 'अचल' का अर्थ है पर्वत। इस प्रकार हिमाचल का अर्थ है बर्फ का पर्वत और साथ ही विभिन्न देवी–देवताओं का निवास स्थान व ऋषि मुनियों की तपोभूमि होने के कारण इसे 'देवभूमि' नाम से अलंकृत किया गया है।

हिमाचल प्रदेश में कला के विभिन्न रुप देखने को मिलते हैं जो न केवल भारत में अपितु विश्व में ख्याति अर्जित कर चुके हैं। इस देव–भूमि में देव आस्था व श्रद्धा के परिचायक देवी अथवा देवताओं को समर्पित विभिन्न शैलियों में निर्मित कई भव्य व सुन्दर मन्दिर है जो वास्तुकला के श्रेष्ठ उदाहरण है। हिमाचल प्रदेश बारह जिलों से मिलकर बना एक सुन्दर पहाड़ी प्रदेश है। इसकी भौगोलिक स्थिति में विषमता होने के कारण ही यहां की वास्तुकला, कला व संस्कृति पर विशेष प्रभाव पड़ा है। इस प्रभाव के कारण ही इस पहाड़ी प्रदेश की कला व संस्कृति में विभिन्न रंग देखने को मिलते हैं। इसलिए इस पहाड़ी प्रदेश की कला व संस्कृति अतुल्य है।

यहां एक ओर वनस्पति रहित शुष्क मरुस्थल है, तो दूसरी ओर ऊँची– ऊँची बर्फ से ढकी चोटियां है, यहां बड़ी–बड़ी पहाड़ियां हैं, तो छोटी–छोटी वादियां भी है, यहां मैदानी इलाका भी है तो घने जंगल भी है, यहां कल–कल बहती नदियां भी है, तो कई मनोरम झीलें भी हैं। इसी तरह यहां वैष्णव, शैव, किन्नर, गंधर्व, यक्ष व बुद्ध धर्म में लोगों की आस्था है। साथ ही लोकगीत व लोकसंगीत, धर्म व संस्कृति, वाक–वृन्द, आभूषण व पहनावा, बोली व रीति–रिवाज, खान–पान व रहन–सहन, मन्दिर व मूर्तियां तथा वास्तुकला में भी विविधता की झलक मिलती है यदि इसे एक धागे में पिरोया जाए तो ये एक समान सुन्दर मोतियों की माला का अहसास देती है और साथ ही सच्ची शांति तथा सूकुन की प्राप्ति से मन प्रफुल्लित हो जाता है। ये ही इस देव भूमि की विशेषता है जो इसे औरों से पृथक करती है और देव भूमि नाम को सार्थक कर देती है।

मन्दिर देवता जाख छवारा घाटी रोहडू जिला शिमला

मोहरे देवता बौन्दरा रोहडू जिला शिमला

प्राचीन पहाड़ी कला शैलियों में स्थापत्य कला में मन्दिर, महल व भवन निर्माण कला में कलाकारों द्वारा देवी–देवताओं, यक्ष–गंधर्वों, ज्यामितिम आकारों, मानवाकृतियों, पौराणिक दन्त कथाओं, फूल–पतियों, पशु–पक्षियों व बेल–बूटों का बहुत ही सुन्दर व सजीव उत्कीर्णन किया गया है अथवा उभार दिया गया है फिर चाहे माध्यम काष्ट हो, पाषाण हो अथवा धातु हो।

उदाहराणार्थ लक्ष्मी नारायण मन्दिर चम्बा, त्रिलोकी नाथ मन्दिर (अवलोकितेश्वर) लाहौल, अर्दनारीष्वर मन्दिर मण्डी, हाटकोटी मन्दिर शिमला, मसरुर के मन्दिर कांगड़ा, बैधनाथ मन्दिर कांगड़ा, भीमाकाली मन्दिर शिमला इत्यादि। हिमाचल के प्रत्येक जिले में अनेकों मन्दिर हैं जिनका पौराणिक, ऐतिहासिक, धार्मिक व सामाजिक महत्व बहुत अधिक है तथा साथ ही इनका कलात्मक महत्व विशेष स्थान रखता है। भवन निर्माण कला में हिमाचल प्रदेश के उपरी भाग विशेषकर शिमला, किन्नौर, कुल्लू व चंबा में काष्ठ के घरों में सुन्दर नक्काशी देखने को मिलती है।

हिमाचल प्रदेश के लगभग प्रत्येक जिला के प्रत्येक गांव में किसी न किसी देवी अथवा देवता को समर्पित मन्दिर अवश्य पाए जाते हैं। ये अलग बात है कि कोई बहुत विशाल, भव्य व अलंकृत है तो कुछ बहुत ही छोटे होते हैं। पर कला की दृष्टि से इन छोटे–छोटे मन्दिरों में भी कहीं–कहीं कला के असाधारण कौशल व नमूनों का परिचय देखने को मिलता है, और साथ ही जहां मन्दिर है तो मूर्ति अथवा मोहरों का होना अवश्यमभावी है। हिमाचल प्रदेश में पत्थर, धातु व काष्ठ पर बनी मूर्तियां बहुत ही सुन्दर व सजीव है तथा इनमें भारत में पाए जाने वाली विभिन्न कला शैलियों के गुण विद्यमान हैं और साथ ही विभिन्न काल–खण्डों की कला का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। गांधार,

मौर्य, कुषाण पाल, चोल, गुप्त इत्यादि।अजन्ता, एलोरा, एलिफेन्टा, खजुराहो के कला कौशल के तत्व भी विद्यमान है।

इन सभी गुण शैलियों के अतिरिक्त एक ओर कला शैली का अप्रितम उदाहरण देखने को मिलता है जो सहज अभिव्यक्ति की शैली है इसमें कलाकार ने अपने मनोभाव व कल्पना के आधार पर अपनी अभिव्यक्ति को एक साकार रुप देने का सुन्दर प्रयत्न किया है। इस तरह का कार्य कलाकार द्वारा मन्दिरों, महलों अथवा भवनों के काष्ठ व पाषाण पर देखने को मिलता है और साथ ही शिल्प रचना, मुखौटों तथा विशेष रुप से देवी अथवा देवताओं को समर्पित उनके प्रतिरुप अर्थात् धातु के मोहोरों में प्रत्यक्ष देखने को मिलता है। चूंकि मोहरों पर अभी हिमाचल में बहुत ही सीमित शोध हुआ है अतःएव अभी कला के दुर्लभ नमूनों से हम अनभिज्ञ है। जिस तरह हिमाचल प्रदेश की कांगड़ा कलम लघु चित्र शैली को आज विश्व में उनके सुन्दर संयोजन, भिन्न–भिन्न विषय–वस्तु, महीन रेखाओं व भाव प्रवणता के लिए जाना जाता है ठीक उसी प्रकार यहां की मोहरें भी अपने आप में ये गुण समाहित किए हैं आवश्यकता है तो व्यापक शोध की। बेजान धातु के टुकड़ों को कलाकारों ने न सिर्फ आकार में ढाला वरन उसे दैवीय आलौकिक चमक प्रदान कर न केवल देवताओं के प्रतिरुप समान प्रस्तुत किया अपितु सजीवता से उपर ले जाकर अमरत्व प्रदान किया। जिनके समक्ष देवभूमि की जनता नममस्तक हो जाती है। इन कलात्मक मोहरों का अपना विस्तृत इलाका होता है, अपनी प्रजा होती है व इनके लिए कला से सुसज्जित इन भव्य मन्दिरों का निर्माण किया जाता है।

चित्रकला के संदर्भ में बात करें तो कांगड़ा कलम का विकास महाराजा संसार चंद (1775–1823) के नाम से जुड़ा हुआ है। उनके राज्य काल में यह 'कलम' विकास के शिखर पर थी। 'रागमाला' नाम के असंख्य चित्र कांगड़ा शैली में बनाए गए हैं। जयदेव के 'गीत गोविन्द', बिहारी की 'सत्सई', केशव दास की 'रसिक प्रिया, भगवत पुराण, देवी महात्मया एवं महाभारत पर असंख्य चित्रों की रचना हुई जो एक से बढ़कर एक है। कांगड़ा शैली की विषय वस्तु 'प्रेम' है। कांगड़ा शैली के चित्रों में नारी को इसके उत्कृष्ट रुप में दिखाया गया है, जिसकी आंखें लंबी मोटी, दृढ़ गोल स्तन, कमर पतली, मेंहदी से सजे कोमल हाथ। उसके कामुक मनोवेग की झलक उसकी आंखों में दिखती है। साथ ही शील–शालीनता ही कहीं अवहेलना नहीं होती। हिमाचल प्रदेश चित्रकला में 'गुलेर' का नाम सबसे पहले लिया जा सकता है। यहीं से कांगड़ा कलम, चंबा, मंडी, कुल्लू आदि चित्रकला कलमों के विकास का इतिहास शुरु होता है। बसौहली शैली गुलेर या

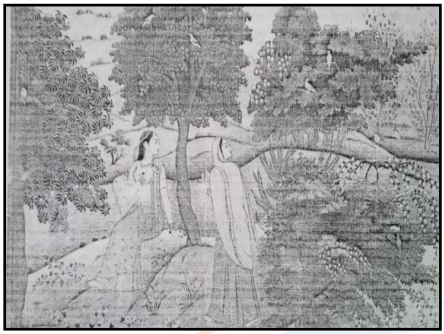

राधा श्रीकृष्ण का इन्तजार करते हुए, गीत गोविन्दा चित्र श्रृंखला (1775–1780) भारत कला भवन बनारस

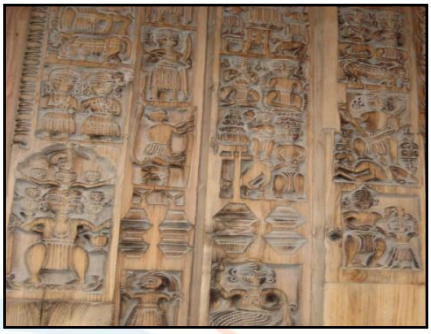

देवता किलबालू मन्दिर जांगलिक जिला शिमला (हि.प्र.) के मुख्य द्वार पर उत्कीर्ण कलाकर्म

कांगड़ा से भी पुरानी है। इसका प्रभाव मण्डी, चंबा एवं कुल्लू शैलियों पर पड़ा। यह शैली इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि इसकी विषय वस्तु कांगड़ा कलम की भांति होने पर भी इसमें मनोवेग को अधिक प्रबल रुप से प्रकट किया है। इन चित्रों में आंखें अधिक बड़ी है तथा आकृतियां इनती सभ्य नहीं है।

इन लघु चित्रों का बड़ा रुप हमें महलों, दुर्गों व भवनों की भितियों में देखने को मिलता है। चंबा, मण्डी, कांगड़ा, कुल्लू, बिलासपुर, अर्की आदि स्थानों पर बने राजभवनों, किलों तथा मन्दिरों में बने चित्र स्थानीय भिति–चित्रों में उल्लेखनीय है। चंबा का रंगमहल भितिचित्र शैली का अदभूत नमूना है। इसे राणा उम्मेद सिंह (1748–1764) ने बनाना आरम्भ किया था। टेहरे और द्वार अलंकरण भी भितिचित्रों के नमूने हैं। ये चित्र अमीर घरानों में चितेरों द्वारा तथा निर्धन परिवार में स्त्रियों द्वारा बनाए जाते थे।

चम्बा रुमाल (पहाड़ी रुमाल) चम्बा में इस कला का विकास एवं प्रसार राजा राज सिंह के शासन काल में और रानी शारदा के समय में सबसे ज्यादा हुआ। ये रुमाल वर्गाकार कपड़ों में बनाए गए हैं। कहीं–कहीं लम्बाई में अधिक और चौड़ाई में कम कपड़ों का भी प्रयोग होता है। इस पर रंग–बिरंगें पक्के रेशमी धागों द्वारा रासलीला, कृष्ण लीला, राग–रागनियां तथा पौराणिक चित्रों का मनोहारी चित्रण मिलता है। चम्बा में यह परम्परा बसौहली से आई और वहां से राजा संसार चंद के काल में कांगड़ा में और बाद में अन्य राज्यों में विकसित हुई। और आज विश्व प्रसिद्ध हो चुकी है।

इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जिलों में विभिन्न प्रकार के परिधान आज अपनी एक विशेष पहचान बना चुके हैं साथ ही यहां के लोक गीत व संगीत तथा वाद्य–यन्त्रों की गूंज इस देव–भूमि के कण–कण में समाहित है। कला कि दृष्टि से भी

यहां के परिधानों, वाद्य यन्त्रों व रोजमर्रा की वस्तुओं में किया गया अलंकरण अपनी मौलिकता व सजीवता का जीवन्त उदाहरण है। तथा यहां के शान्तिप्रिय, मेहनती और भोले–भाले लोगों का कला के प्रति समर्पण व प्रेम को स्वतः प्रकट करता है। विदित रहे कि उस समय के कलाकार प्रायः अशिक्षित होते थे। ये उनके अथक परिश्रम, कला प्रेम व अभ्यास का ही परिणाम है कि उन्होंने कला के विभिन्न शैलियों व माध्यमों को वो आयाम दिया तथा एक से बढ़कर एक सुन्दर रचनाएं कि जिनमें सौन्दर्य है, माधुर्य है, लय है और जो सच्चे अर्थों में हमें प्राचीन पहाड़ी कला का दर्शन कराती है और जिसकी आत्मा पूर्ण रुप से भारतीय है। जिसकी आज हमें अत्यन्त आवश्यकता है।

अतःएव ये सभी तथ्य इंगित करते हैं कि हिमाचल प्रदेश प्राकृतिक दृष्टि से तो सुन्दर है ही परंतु यहां के जनमानस का कला के प्रति प्रेम भी अदभूत था जो न केवल आज हमें अपनी कलात्मक विरासत और संस्कृति पर गौरावान्वित, प्रफुल्लित तथा प्रोत्साहित करता है अपितु हमारे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी एक प्रेरणा स्त्रोत, शोध विषयक व गौरव पूर्ण धरोहर है जो हमारे पूर्वजों का हमारे लिए स्नेहल उपहार है जिसे हमें आज कि इस भागम–भाग, प्रतिस्पर्धा व विज्ञान–प्रौद्योगिकी की होड़ में सहेज के रखना है।

हिमाचल का प्राचीन काल 500 से 1000 ई० तक, मध्यकाल 1000 से 1800 ई० तक तथा आधुनिक काल 1800 से 1948 ई० तक माना जाता है और यही वह समय था जब कला के विभिन्न क्षेत्रों में हमारे कला प्रेमी राजा–महाराजाओं के आश्रय व सहयोग द्वारा कलाकारों ने एक से बढ़कर एक कला कर्मों की निर्मिती की जो न केवल सुन्दर अपितु श्रेष्ठ भी मानी जाती है। आज हमारे लिए प्रेरणा का स्त्रोत है और रहेगी और साथ ही हमें यहां चिन्तन करने की भी आवश्यकता है।

चिन्तन इस बात का कि क्या हम कला के इन अदभूत नमूनों को पूरी निष्ठा के साथ सहेज पाएंगें जिनके निर्माण में हमारे पूर्वजों ने अपना जीवन लगा दिया? क्या आज की पीढ़ी एक प्राचीन पहाड़ी कला की शिक्षा व अनुसरण करने को तैयार है ताकि आने वाली पीढ़ीयों तक इस कला व इसकी बारीकियों को पहुंचाया जाए? क्या ऐसा कोई शिक्षण संस्थान या विभाग है जहां इस पर चर्चा, अभयास व कला रचना कौशल का विकास किया जाए? क्या सूचना–प्रौद्योगिकी के इस युग में जहां आज कि पीढ़ी के पास

समय का अभाव है बावजूद इसके अपनी प्राचीन पहाड़ी कला व संस्कृति को बचाने, सहेजने, समझने व सीखने में अपने कई वर्ष लगा देंगे?

हर वस्तु की एक आयु होती है चाहे वह धातु हो, पत्थर हो, लकड़ी हो, कपड़ा, कागज या फिर कुछ और वर्ष दर वर्ष मौसम अथवा जलवायु के घटक किसी ना किसी रुप में किसी भी वस्तु की आयु कम करते रहते हैं। ऐसे में इन कला के नमूनों को सहेजना और इनका उचित रख–रखाव करना आवश्यक हो जाता है। आज हमारे प्रदेश से अनेकों मूर्तियां, मोहरें व प्राचीन पहाड़ी कला की कई वस्तुएं तस्करी द्वारा दूसरे देशों में पहुँच रही हैं या फिर यदा–कदा ऐसी कोशिशें होती आ रहीं हैं। ये कैसे संभव हो रहा है। यदि हो रहा है तो इसे रोकने के लिए आवश्यक प्रयास किए जाने चाहिए।

हिमाचल प्रदेश में काष्ठ पर बहुतायत में काम हुआ है। असंख्य भव्य व सुन्दर मन्दिरों के निर्माण में काष्ठ पर अदभूत कला की रचना हुई है तथा कई मन्दिरों में पहाड़ी लोक कला शैली का ऐसा उदाहरण देखने को मिलता है जो अन्यत्र कहीं नहीं है क्योंकि यह मात्र कला न होकर कलाकार के अंर्तमन की अभिव्यक्ति का सूचक होता है और कलाकार की मौलिक रचना का नमूना होता है जिसे अन्यत्र खोजना नामुमकिन है। दुर्भाग्य से लकड़ी की आयु 80 से 100 साल तक की ही होती है और देखभाल के अभाव में ये स्वयं नष्ट हो जाती है तथा दूसरे भी कई खतरे हैं जैसे आगजनी तथा कोई भी प्राकृतिक विपदा। ऐसे में ये आवश्यक हो जाता है कि कला के इन नमूनों की प्रतिलिपि तैयार की जाए ताकि आने वाले समय में जब इसका पुर्ननिर्माण हो तो यथावत इसका रुपान्तरण किया जा सके।

पहाड़ी लघु चित्र शैली, चम्बा रुमाल, महलों व दुर्गों के भितिचित्र, प्राचीन मन्दिरों महलों व भवनों की काष्ठ कला, धातुई मोहरें, पारंपरिक परिधान व उन पर की गई सज्जा, प्राचीन पहाड़ी वाद्य यन्त्र, लोकगीत व संगीत, प्राचीन पहाड़ी शैली मन्दिर, महल व भवन निर्माण कला, देवी–देवताओं के रथ व उन पर की गई अलंकरणात्मक कला, आभूषण निर्माण कला, भारत की विभिन्न कला शैलियों से प्रभावित पहाड़ी कला, पहाड़ी लोक नृत्य व साथ ही सहज अभिव्यक्ति से प्रस्फुटित प्राचीन पहाड़ी लोक–कला तथा अन्य कई प्राचीन पहाड़ी वस्तुओं के निर्माण व उन पर उकेरी गई कला। इस प्रकार देव भूमि में प्राचीन पहाड़ी कला के असंख्य नमूने हमें विरासत रुप में प्राप्त हैं। जिनमें से कई यथावत स्थिति में हैं, कई समय चक्र में पिस रहें है तथा कईयों का कलात्मक ज्ञान

के आभाव व जागरुकता न होने के कारण पतन हो रहा है तो बहुतों को समय चक्र निगल चुका है। परन्तु इन सबमें समय का दोष बिल्कुल नहीं है यदि हम अपनी कलात्मक व सांस्कृतिक धरोंहरों को आज भी नहीं सहेज पाए जबकि हिमाचल प्रदेश शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी राज्यों में एक है तो ये समय का नहीं वरन दोष हम जैसे शिक्षित वर्ग का होगा। समसामयिकी में कला के प्रति चिन्तन की एक गंभीर बात भी हमारे सामने उभरकर आती है। जिसे समकालीन कला कर्म में हम अक्सर देखते हैं और वह है नकल की कला।

जिला शिमला (हि.प्र.) के मन्दिर के दीवार पर काष्ठ व पाषाण पर कलाकर्म

बात कांगड़ा कलम की चित्रों की करें तो अक्सर पूर्वज महान कलाकारों के चित्रों की ही प्रतिलिपियाँ तैयार की जाती है। चित्रों के विषय, संयोजन, रेखा, रंग–वर्ण सभी कुछ वही है और वही दोहराया भी जा रहा है, परन्तु फिर भी आज के कला–कर्म में भाव प्रवणता, प्रेम, स्वच्छंदता, विरह, वियोग अर्थात चित्र की आत्मा का लोप स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। यह कलाकार के अपूर्ण ज्ञान व कला कर्म में धैर्य की कमी के साथ–साथ अपना नाम बनाने व धन कमाने की लालसा का परिचायक है।

जबकि पूर्वज कलाकारों में चित्र रचना से पूर्व चित्र विषय का संपूर्ण ज्ञान होता था। उनके चित्रों की रेखाओं में जो लय, लोच व महीनता है उसके लिए असीम धैर्य कि आवश्यकता थी जो उनमें था। चित्र के संयोजन व रंगों के चुनाव में भी उनका कला के प्रति धैर्य व कला की बारीकियों का ज्ञान स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है तथा नाम, पद व धन की लालसा तो उनसे कोसों दूर रही होगी क्योंकि जब चित्र निराकार से आकार लेकर

सजीव हो उठता है तो चित्र स्वयं बोलता हैं और दर्शक स्वयं कलाकार के सम्मुख नतमस्तक हो जाते हैं। यही उन प्राचीन कला गुरूओं की कला की विशेषता है जिससे आज पूरा विश्व प्रभावित हुए बिना नहीं रहा है।

इसी प्रकार मन्दिरों के काष्ट व पाषाण पर हुआ प्राचीन कला कर्म हमें अपने पौराणिक इतिहास से जोड़ता है या हम कह सकते हैं कि हमें अपने मूल से बांधे रखता हैं। कई प्राचीन मन्दिरों के कलाकर्म को प्रत्यक्ष देखकर लगता है कि वहां केवल एक चित्र का निरूपण नही हुआ है उन्होंने बड़े ही धैर्य और निपुणता के साथ लकड़ी और पाषाण पर कई पौराणिक दन्त कथाओं की चित्र श्रृंखला की रचना की है जो लोक कला शैली का अद्भूत उदाहरण होने के साथ–साथ उस समय के गूढ़ रहस्यों को उजागर करने में सहायक है और कला इतिहास व इतिहास की किताबों के पन्नों में एक नवीन पृष्ठ की वृद्धि करेंगें।

इसके साथ ही पहाड़ी लघु चित्र शैली व पहाड़ी लोक शैली तथा सहज अभिव्यक्ति की शैली का एक ऐसा सुन्दर समिश्रण है जिन्होंने निर्जीव पाषाण व काष्ट को काटकर, छिलकर और कुरेदकर सजीव कर दिया। ये उन महान कलाकारों की कला के प्रति असीम प्रेम, श्रद्धा व सच्ची लग्न का ही परिणाम है जिसे देखकर हम अपने अतीत, अपनी देव परम्परा व गूढ़ रहस्यों के साथ–साथ यहां बिखरे प्राचीन मन्दिरों के काष्ट व पाषाण के उत्कीर्णन में कला के विभिन्न आयामों का रस्वादान करते हैं फिर चाहे उत्कीर्णन ज्यामितिय आधार पर बने बेल–बूटे फूल–पत्ते हो अथवा प्रकृति में पाए जाने वाले पशु–पक्षी विभिन्न प्रकार के पौराणिक देवता जिनका उत्कीर्णन लोकशैली में शास्त्र शुद्ध मूर्तविज्ञान के आधार पर किया गया है या विस्मय प्रकार के जीव जन्तु, देवी–देवता जिनका उत्कीर्णन कलाकार ने अपनी कल्पना व बौद्धिकता के संपूर्ण ज्ञान के आधार पर किया है, सचमुच बहुत सुन्दर है तथा कला की यह सुन्दरता ही देवभूमि हिमाचल के भव्य व लघु मन्दिरों की आत्मा है।

परन्तु दुख की बात है कि आज जिन नए मन्दिरों का निर्माण किया जा रहा है अथवा पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया जा रहा है उसमें प्राचीन मन्दिर की मूल कला जो प्रमुखता लकड़ी पर उकेरी गई है साथ ही साथ नष्ट की जा रही है। यह प्राचीन कला गुरूओं की कला की अवहेलना के साथ–साथ हमारी पौराणिक सांस्कृतिक धरोहरों का भी पतन है। जो नवीन कलाकर्म किया जा रहा है उनमें मुख्य रूप से नकल की

कला ही हावी है। यह पूर्वज कलाकारों की कला के प्रति सम्मान की बात होती अगर ये नकल प्राचीन मन्दिरों के काष्ट अथवा पाषाण पर उत्कीर्णीत कला से प्रेरित होती अथवा चाहे तो उनकी हू ब हू प्रतिलिपि ही क्यों न होती ताकि आने वाली पीढ़ियों तक ये यथावत बनी रहती। परन्तु खेद इस बात का है कि नव निर्माणाधीन मन्दिरों पर जो समकालीन कला कर्म हो रहा है वह मात्र कलैण्डरों को सामने रखकर किया जा रहा है आज के मन्दिरों में देवी देवताओं जैसे शिव, पार्वती, गणेश, श्रीकृष्ण, विष्णु, लक्ष्मी आदि की जो रचना की जा रही है वह सीधे–सीधे कलैण्डरों से की जा रही है यही नहीं फूल–पत्ते, बेल–बूटे, पशु–पक्षी के चित्रण में भी इनकी ही नकल हो रही है जो बहुत ही चिन्ता का विषय है। आज कलाकारों में कलैण्डर से नकल करने की ऐसी अंधी होड़ मच गई है कि कौन कितनी सफाई से नकल कर सकता है, इस बात कि चिन्ता किए बगैर कि उनके पूर्वजों ने जिस श्रम और साधना से पहाड़ी लोक शैली को एक सजीवता व महानता दिलाई लगता है आज इस कलैण्डर की नकल के आगे अब ज्यादा समय तक ठहर नहीं पाऐगी। यही बात यहां कि जनता व सरकार पर भी लागू होती है जो लाखों, करोड़ों रूपये खर्च कर मन्दिरों को सजाने व बनवाने में व्यय तो कर रहे हैं मगर कला के प्रति अज्ञानता व अपनी ऐतिहासिक धरोहरों के प्रति उदासीनता के फलस्वरूप खामोश बैठे हैं।

इसी प्रकार भौंडी नकल की कला आज हर रूप और हर आयामों में घर कर चुकी है फिर चाहे माध्यम कुछ भी क्यों न हो। यहां तक कि चित्र प्रदर्शनियों में भी ऐसे चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं जिन्हें कला का कोई भी ज्ञाता बिना विलम्ब के पहचान लेगा की यह नकल के सिवा कुछ भी नहीं है परन्तु फिर भी ये चित्र और चित्रकार ईनाम और सम्मान पा रहे हैं। ऐसे में हम इस कला को सृजन की कला तो कह नहीं सकते अपितु ये विसर्जन की कला अवश्य है क्योंकि इसका समाज को न तो कोई परोक्ष और ना ही अपरोक्ष लाभ होना है। सिर्फ और सिर्फ ये लाभ केवल आज स्वार्थी व लोलुप कलाकारों तक सीमित है जो कला की भाषा व परिभाषा तो नहीं जानते मगर अपने भले के लिए कला में कील गाढ़ना बखूबी जानते हैं सचमुच चिन्तनीय है।

सांस्कृतिक व कलात्मक विरासतों को सहेजने के लिए सर्वप्रथम कलात्मक दृष्टिकोण का होना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक हमारे मन में कला के लिए प्रेम व आदर नहीं उपजेगा तब तक हमारे लिए इन धरोहरों को सहेज पाना आसान नहीं होगा। इसके लिए बचपन से ही प्राथमिक शिक्षा कि शुरुआत से लेकर विश्वविद्यालय की शिक्षा

तक कला विषय को अनिवार्य करना आवश्यक है ताकि बचपन से हमारे अंदर कलात्मक गुणों का विकास होना प्रारम्भ हो और बड़े हाने तक हम अपनी देव भूमि, यहां की कला, संस्कृति व वास्तुकला की ही नही वरन संपूर्ण भारत वर्ष व विश्व की कला, संस्कृति व वास्तुकला को समझें और उनका आदर करें। साथ ही जान पाएं कि हमारे पूर्वजों ने वास्तव में हमें कितनी समृद्ध धरोहर विरासत रुप में दी है और आने वाली पीढ़ियों को हम यथावत रुप में न केवल इस खज़ाने को भेंट करें अपितु हम भी देव भूमि के खज़ानें में अपनी कोशिशों, मेहनत व कला कौशल से किसी न किसी रुप में इस खज़ाने के रत्नों में वृद्धि करें। ये हमारी अपने पूर्वजों और उन महान कलाकारों के लिए सच्ची श्रदांजलि होगी। अन्त में 'काव्य–मीमान्सा' के अनुसार सृजनात्मक प्रतिभा तीन प्रकार ही होती है

1 सहज 2. औपदेशिक 3. अभ्यासिक

विरासत में मिली ये कला इसका ज्ञान व अवलोकन हमारे लिए आज 'सहज' है, किन्तु हमारे पूर्वज कलाकारों को उनके गुरुजनों व उनके आश्रयदाताओं राजा, महाराजाओं की ओर से 'औपदेशिक' योगदान भी मिला। जिसकी आकांक्षा आज हम हमारी सरकार से रखते हैं ताकि समय रहते देवभूमि में कलात्मक वातावरण की रचना की जा सके और समय के गुजरते पल–पल के साथ आज का युवा कलाकार पूर्णतया 'अभ्यासिक' व कलात्मक विरासत तथा कला कर्म को पाण्डित्य के शिखर तक ले चले और अविराम इसका प्रवाह पीढ़ी दर पीढ़ी भागीरथी की गंगाजी की तरह पवित्र, पावन व वेगमय हो।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

बी.एन.गोस्वामी, एर्बहार्ड, ''पहाड़ी मास्टर : उत्तर भारत के दरबारी चित्रकार'', नियोगी बुक्स, 2009।

लोकश चन्द्र शर्मा, ''भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास'', गोयल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ।

मियां गोवर्धन सिंह, प्रो. चमन लाल गुप्त, ''हिमाचल प्रदेश का इतिहास, संस्कृति और आर्थिक परिवेश'', मिनर्वा पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स शिमला।

कला दीर्घा, दृश्य कला की अंतर्देशीय पत्रिका, अप्रैल 2010, वर्ष 10, अंक 20, सम्पादक : डॉ. अवधेश मिश्र।